SEMESTER - 3

CC- 11

South Asia 1950 Onwards

- **इंडियन डायस्पोरा , पार्ट-3**

Vetted by :

प्रो० (डॉ०) सुरेंद्रकुमार

विभागाध्यक्ष, इतिहासविभाग

पटनाविश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 09835463960

Presented by:

शिप्रानंदन

अतिथिशिक्षक, इतिहासविभाग

पटनाविश्वविद्यालय, पटना

संपर्क :08604171178

nandan.shiprabhu@gmail.com

इंडियन डायस्पोरा (पार्ट-३)

औपनिवेशिक काल में विभिन्न देशों में भारतीय प्रवास :

विदेश में अपने हितार्थ बसे हुए इन भारतीयों की एक समुदाय के रूप में प्रतिष्ठा नहीं बन पाई,वे मूल निवासियों से घुल मूल नहीं पाए और उनके लिए राष्ट्रीय अस्मित्ता का प्रश्न जब उठा तो उनके बीच संपर्क भाषा के रूप में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही उनकी राष्ट्रीय अस्मित्ता की पहचान बनी। सुरक्षा और सहयोग के लिए उन्होंने साथ रहना उपयोगी समझा जो सुख दुःख के अवसर पर उनके सहभागी बन सकें। अमेरिका में न्यूजर्सी ,इंग्लैंड में मिडिल ,मलेशिआ में मस्जिद इंडिया,सिंगापुर में लिटिल इंडिया,सऊदी अरबिया में लिटिल एशिया ऐसे ही स्थान है जहाँ जाने पर अपने देश जैसा ही महसूस होगा।

भाषा,संस्कृति का मुख्य घातक है। खान पान वेश भूषा,रीति रिवाज़ में सहज परिवर्तन दूसरी संस्कृति के प्रभाव से सहज ही हो जाता है पर भाषा जो मानवीय अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है,व्यक्ति उसे जल्दी नहीं छोड़ पाता। भाषा उसकी अस्मित्ता की सबसे बड़ी पहचान बन जाती है। यह तथ्य दोनों कोटि के प्रवासी भारतीयों की ज़िन्दगी में सत्य है। जब प्रवासी भारतीयों की जनसँख्या का प्रतिशत दूसरे देश के मूल निवासियों की जनसंख्या के प्रतिशत के लगभग बराबर होता है वहां अपनी भाषा की सुरक्षा और प्रतिष्ठा सामान्यतः अधिक सरल होती है। यथा मॉरीशस में प्रवासी भारतीयों का देश की जनसंख्या का प्रतिशत ६८.३%,गुयाना में ४३.५%,त्रिनिदाद में ४०.२%,सूरीनाम में २७.४%,फिजी में ४०.१% है। भारतीयों के अधिक प्रतिशत होते हुए भी हम देखते हैं कि गुयाना और त्रिनिदाद और टोबैको में आज हिंदी लगभग

लूपत्प्राए सी है और उसका स्थान अंग्रेजी भाषा ने ले लिया है। इन देशों में आज भी पुरानी पीढ़ी ने हिंदी को बचाये हुए हैं पर वह लुपत होने के कगार पर है। हिंदी बोलने वालों की संख्या निरंतर घटती जा रही है। यदि हम हिंदी के वैश्विक स्वरुप का विस्तार चाहते हैं तो उसे बचाने और बढ़ानेका प्रयत्न होना चाहिए।

यहाँ एक बात समझना आवश्यक है की प्रथम कोटि के देशों में जिनमे मौरीसस,सूरीनाम,फिजी और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों की गणना है वहां के प्रवासी भारतीयों की हिंदी भारत की परिनिष्ठित खड़ी बोली हिंदी नहीं है। वहां की हिंदी भोजपुरी मिश्रित अवधी है,जिसमे स्थानीय भाषाओँ के शब्द मिले हुए हैं और जो प्रवासी भारतीयों के मध्य जहाजी भाइयों की भाषा के रूप में विकसित हुई है जिसका उन्होंने नामकरण भी अलग अलग रूपों में किया हुआ है। फिजी में वह फिज़िबात,सूरीनाम में वह सरनामी और दक्षिण अफ्रीका में वह नेताली के नाम से जनि जाती है। यही हिंदी उनकी अपनी हिंदी है,जिसका वह दैनिक बोलचाल में प्रयोग करते हैं। विदेश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों को आपस में जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका तुलसीदास द्वारा अवधी में लिखित "रामचरितमानस" की रही है। १९वी सदी में जितने भी भारतीय विदेश गए थे। वे भोजपुरी,अवधी,मारवाड़ी,मगही आदि भाषाएँ बोलते थे पर वे सभी रात को साथ बैठ बैठकर मानस की चौपाइयां ही गाते थे और दिनभर की थकान और अपमान को भूलने की कोशिश करते थे। "रामचरितमानस" प्रवासी भारतीयों न के मध्य एक संजीवनी थी तथा वह उनके बीच आचार संहिता का काम करती थी जिसने सभी प्रवासी भारतीयों को नए देश में संगठित तो रखा ही अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भी सुरक्षित रखने में सहायक बनी। सभी प्रवासी भारतीय इसलिए तुलसीदास की लिखित रामचरितमानस

को सम्मान देने के लिए फिजी में मानस को "रामायण महारानी" कहते थे तो सूरीनाम को उन्होंने "सिरिराम" देश तथा मॉरीशस को "मरीच देश " नाम देकर राम और रामायण के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है। मानस की भाषा अवधी है इसलिए कितने ही हिन्दीतर भाषियों ने "रामायण" पढ़ सकने के लिए हिंदी-अवफधि सीखी थी। यही कारण है किसूरीनाम और फिजी जैसे देशों की इतनी भगौलिक दुरी होते हुए भी मानस की चौपाइयां गाते गाते सभी भारतीयों की प्रतिदिन के प्रयोग की भाषा अवधी बन गई।

प्रवासी हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग डेढ़ सौ वर्षों का है और यह साहित्य प्रधानतः भारतीयों के विदेश आगमन,उनके संघर्ष के सृजनात्मक हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवास की पीड़ा है जो साहित्य में आद्यंत देखने को मिलेगी यद्दपि उसका स्वरुप विविध सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियोंवश बदलता हुआ दीखता है। प्रवास में जहाँ व्यक्ति के मन में नई जगह जाने का उत्साह है,चुनौती है,नई आशाएं और कामनाएं हैं। इन भावों में डूबता उतरता मानव प्रवास का निश्चय करता है। अपनों का विछोह,अपनी मिटटी का विछोह प्रवासी के मन में एक गहरी कसक उत्पन्न करता है। इस कसक को व्यक्ति नए सुखमय भविष्य की आशा में भुलाने की चेष्टा करता है। यदि नया वातावरण अधिक सुख -सुविधा संपन्न है तो प्रवासी धीरे -धीरे नए वातावरण में राम जाता है और विछोह की पीड़ा धीरे धीरे काम होती जाती है। वहीं दूसरी ओर यदि प्रवास वह वातावरण नहीं दे पाता जिस आशा से व्यक्ति अपना घर बार छोड़कर विदेश गया है तो प्रवास बड़ा कष्टकर लगता है,उसका मन क्षोभ और ग्लानि से भर जाता है। न वह वापस अपने देश जा पाता है और न ही उसका मन प्रवासन वाले देश में लग पाता है।

अपनी भूमि को छोड़कर विदेश गया व्यक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवासी ही रहता है। उसके मन में प्रवास की पीड़ा होती है। उसके मन में एक दुविधा निरंतर बनी रहती है की यह नई दुनिया उसके लिए अधिक अच्छी है की नहीं। वह अपनी भाषा,अपनी संस्कृति,अपने जीवन मूल्यों को बराबर पकड़े रहना चाहता है क्युकी यही दूसरे देश में उसकी अपनी पहचान है। नए देश के मूलनिवासी कभी भी उसे मूल रूप में स्वीकार नहीं कर पाते हैं। रूप रंग भेद ही नहीं भाषा,खान पान,आचार विचार,रीति नीति जीवन मूल्य का अंतर विदेश में उसे अलग बनाये रखता है और यही प्रवास का दंश है